ऊँ संविच्छक्त्यै नमः ॥

शैवशास्त्र संग्रह

तथा

संग्रहस्तोत्रं

(काश्मीर शैव (त्रिक) मत सम्बन्धित विभिन्न ग्रंथों के
कुछ प्रमुख श्लोकों की सरल भाषा टीका)

नमः शिवाय सततं पंच कृत्यविधायिने ।
चिदानन्दघनस्वात्म परमार्थावभासिने ॥

संपादक तथा प्रकाशक :—
श्री राम शैव (त्रिक०) आश्रम, फतेहकदल, श्रीनगर ।

(सं० २०३८ वि०)

प्रथम संस्करण : ५००

मूल्य पांच रुपये

Printed at :- BANSI ART PRESS, Nai-Sar k

भूमिका

काशमीर में शैव (त्रिकमत) को जो पिछली शताब्दियों में काल चक्र के कारण लुप्त प्राय हो गया था, पुनर्जीवित करने के लिए भगवान शङ्कर को महामाहेश्वराचार्य श्री स्वामी राम के रूप में अवतरित होना पड़ा । वे हब्बाकदल श्रीनगर में संवत् १९१० वि० (१८५४ खि्०) में पौष कृष्ण पक्ष द्वादशी के शुभ अवसर पर शुकदेव नामी उत्तम ब्रह्मण के घर उत्पन्न हुए। इस अनुत्तर त्रिक दर्शन की दीक्षा इन्हों ने अपने चाचा श्री ईश्वर साहिब से ली, और शैव शास्त्रों के अध्ययन के लिए एक सिद्ध विद्वान स्वामी मनसा राम जी मोंगा को अपना गुरु बनाया और उन्हीं के चरण कमलों में अध्ययन करके अपना बाल्य काल और यौवन बिताया । आत्मलाभ प्राप्त करके इन्होंने परोपकार ही अपना लक्ष्य बनाकर फतेहकदल में उसी स्थान पर जो अब शैवाश्रम के नाम से प्रसिद्ध है अपना निवास स्थान बनाया । यह पवित्र स्थान इस समय काश्मीर में त्रिकमत के प्रचार का मुख्य केन्द्र है । प्रति दिन गुरुजनों की स्मृति में यहां अपना मस्तक झुकाकर तथा शास्त्र पठन से सैंकड़ों नर नारी सांसारिक तथा पारमार्थिक लाभ पाते हैं और शैवशास्त्रों में अध्ययन की ओर प्रेरित होते हैं ।

परम गुरुदेव महामाहेश्वराचार्य स्वामी राम सं० १९७१ वि० तदनुसार १९१५ खि० को अर्न्तधान होने के पश्चात आश्रम का कार्यभार उनके प्रमुख शिष्यों क्रमशः स्वामी महाताभ काक जी तथा स्वामी गोविन्द कौल जी जलाली ने बारी बारी से संभाला । स्वामी महाताभ काक की गुरु भक्ति सम्बन्धित अनेक घटनायें प्रसिद्ध हैं वे अन्तिम क्षण तक आश्रम की सेवा में लगे रहे । स्वामी गोविन्द कौल जी शैव शास्त्रों के अद्वितीय

विद्वान् तथा अनुभवी थे। गृहस्थी होते हुए भी उन्होंने अपना अधिकांश जीवनकाल शैव-शास्त्रों के पठन पाठन में व्यतीत किया। आश्रम की वर्तमान प्रगति का सारा श्रेय उनको ही है। स्वामी गोविन्द कौल के निर्वाण के अनन्तर आश्रम का कार्यक्रम उनके एक वरिष्ट शिष्य महात्मा ताराचन्द जी कुशलतापूर्वक चलाते रहे।

आश्रम में शैव-शास्त्रों का परम्परा अनुसार पठन पाठन, गुरुजनों के जन्मोत्सव तथा वार्षिक यज्ञ नियम पूर्वक चलाये जाते हैं। श्री स्वामी विद्याधर जी तथा स्वामी लक्ष्मण जी रैणा ने भी परम गुरु महामाहेश्वराचार्य स्वामी राम जी महाराज और स्वामी महाताभ काक जी से दीक्षा पाकर क्रमशः करणनगर और ईश्वर आश्रम गुप्त गंगा में त्रिकमत के प्रचारार्थ आश्रम स्थापित किये जहां अनेकों जिज्ञासु दीक्षित होकर कृत कृत्य होते हैं।

शैव शास्त्र से उद्धत साररूप श्लोकों का संग्रह 'शैव-चास्त्र संग्रह तथा संग्रहस्तोत्र' हिन्दी अनुवाद सहित शैव दर्शन के प्रेमियों के विनोदार्थ अर्पण किया जा रहा है। यह श्लोक आश्रम में प्रतिदिन नियमपूर्वक, आर्ति के रूप में पढे जाते हैं। रविवार के दिन संग्रस्तोत्र (स्तोत्रावलि स्तोत्र १३) का पाठ होता है।

भक्तजनों के इन श्लोकों का अर्थ जानने की उत्सुकता और आग्रह पर मैं ने अपनी अल्प बुद्धि अनुसार इन श्लोकों का अर्थ लिखने का प्रयत्न किया। पुस्तक के इस संस्करण में समय की अनुप्लब्धि तथा मुद्रकों की अनभिज्ञता के कारण संभवतः कुछ त्रुटियां रह गई हैं फिर भी मुझे आशा है कि पाठकगण इस भेंट को सर्हष स्वीकार करेंगे तथा उनसे अनुरोध है कि अपने सुझाव देकर अवगत करें ताकि अगले संस्करण में संशोधन करने का अवसर प्राप्त हो सके।

श्रीनगर, कार्तिक ११, २०३८ वि०
दीपावली।

प्रेम नाथ नेहरू

ओं नमः संविद्वपुषे परमशिवाय।

अगाधसंशयाम्बोधि समुत्तरणतारिणीम
वन्दे विचित्रार्थ पदांश्रित्रां तां गुरुभारतीम् ।१।

अत्यन्त गहरे संशय रूप सागर को एक छलांग में पार कराने वाली नौका रूप श्री गुरु देव की विचित्र अर्थों और पदों युक्त आश्चर्य जनक परा वाणी को नमस्कार करता हूं, उसी वाणी के साथ एकता प्राप्त करने की चाह रखता हूँ ।

अनाद्यायाखिलाद्याय मायिने गतमायिने।
अरूपाय सरूपाय शिवाय गुरवे नमः ।२।

मैं गुरुरूप शिव को नमस्कार करता हूँ जो आप अनादि होते हुए भी सब का आद्य हैं, मायामय होते हुए भी माया से परे हैं, निराकार होकर भी साकार सब रूपों युक्त हैं ।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।३।

सारा स्थावरजंगम रूप मंडलाकार विश्व जिस शिव से व्याप्त है उसी शिव का स्वरूप जिस गुरुने शिष्यों को दिखाया है, उसी गुरुदेव की मैं शरण लेता हूँ ।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।४।

अज्ञान रूप अंधकार से अन्धा बने हुए शिष्य की आंखें ज्ञानरूप सुरमे की सलाई से जिन गुरु-देव ने खोली, ज्ञान का उपदेश करके शिष्यों को आत्मज्ञान कराया है, उन्हीं गुरुदेव को मेरा प्रणाम हो।

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं यस्य मे गुरुसन्ततिः।
तस्य मे सर्वशिष्यस्य कोन पूज्यो महीतले।५।

ब्रह्म से आरम्भ करके अत्यन्त स्थूल खम्बे तक यतः मुझे सब गुरु रूप ही दिखाई देते हैं, इसलिए मुझे जो सबका शिष्य हूँ, इस पृथ्वी पर कौन पूजा के योग्य नहीं है? सभी ही जड चेतन पदार्थ गुरुरूप होने के कारण पूजनीय ही हैं।

गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुः साक्षान्महेश्वरः।
गुरुरेव जगत्सर्वं तस्मै श्री गुरवे नमः।६।

गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही साक्षात् शिव हैं, और गुरु ही सारा जगत रूप भी हैं, ऐसे गुरु देव को नमस्कार हो।

नमामिसद्गुरुंशान्तं प्रत्यक्षं शिवरूपिणम्।
शिरसा योगपीठस्थं धर्मकामार्थसिद्धये।७।

मैं धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए, शान्त, प्रत्यक्ष-शिवरूप योग के पीठ पर ठहरे हुए सद्गुरु को सिर झुका कर साष्टांग प्रणाम करता हूँ।

ध्यानमूलं गुरोमूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
शास्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्ष मूलं गुरोः कृपा ।८।

श्री गुरुदेव के साकार स्वरूप का ध्यान सब से उत्तम ध्यान है, उन के ज्ञान क्रिया रूप चरणों का विमर्शन करना सब से उत्तम पूजा है, उनके मुख कमल से निकली वाणी तथा वाक्य शास्त्रों का सार होने के कारण विमर्श करने योग्य है, और उनकी दया-दृष्टि से ही मनुष्य जन्म मरण के दुःख से छुटकारा पाकर मुक्ति का आनन्द ले सकता है ।

यस्योन्मेषनिमेषाभ्यां जगतः प्रलयोदयौ ।
तं शक्तिचक्रविभवप्रभवं शङ्करं स्तुमः ।९।

हम उस कल्याण कारी शंकर की स्तुति करते हैं जिनके आंख खोलने और आंख बन्द करने से (जगत की ओर दृष्टि करने से और जगत से दृष्टि वापस फेरने से) ज़गत की उत्पत्ति और नाश हो जाते हैं और जो अनन्त शक्तियों के समूह रूप ऐश्वर्य की उत्पत्ति के कारण हैं ।

न ध्यायतो न जपतः स्याद्यस्याविधिपूर्वकम् ।
एवमेव शिवाभासस्तं नुमो भक्तिशालिनम् ॥१०॥

हम उस उत्तम भक्तजन को नमस्कार करते हैं, जिसे ध्यान, जप आदि उपायों के बिना ही (अपने आप स्वतः सिद्ध ही) अपनी भक्ति के अतिशय से शिव सदा प्रकट रहें ।

उद्धरत्यन्धतमसात् विश्वमानन्दवर्षिणी ।
परिपूर्णा जयत्येका देवी चिच्चन्द्रचन्द्रिका ॥११॥

शिवरूप चन्द्रमा की चान्दनी (प्रकाश) रूप संवित देवी की जय हो, जो जगत को अज्ञान रूप अन्धकार से निकाल कर प्रकाश में लाती है और जो परिपूर्ण (निराकांक्ष) है और आनन्द बरसाने वाली है।

नौमि चित्प्रतिभां देवीं परां भैरवयोगिनीम् ।
मातृमानप्रमेयांशशूलाम्बुजकृतास्पदाम् ।१२।

मैं चैतन्यरूप संवित् भगवती को नमस्कार करता हूं जो परा रूप है और भैरव रूप शिव के साथ अभिन्न है और जो प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय रूप अंशों युक्त त्रिशूल रूप कमल पर विराजमान है।

नौमि देवीं शरीरस्थां नृत्यतो भैरवाकृतेः ।
प्रावृण्मेघघनव्योम विद्युल्लेखाविलासिनीम् ।१३।

मैं नाचते हुए भैरव, नर्तकरूप शिव के स्वरूप में अभिन्न भाव से स्थित देवी चित् शक्ति को नमस्कार करता हूँ जो वर्षा ऋतु के घने बादलों से ढके आकाश में बिजली की चमक की रेखा जैसी चमकती है।

प्रसरच्छक्तिकल्लोल जगल्लहरिकेलये ।
सर्वसम्पन्निधानाय भैरवाम्बोधये नमः ।१४।

सभी सम्पदाओं के खजाना रूप भैरव रूप सागर को नमस्कार हो, सारा जगत जिस सागर (शिव) की निकलती हुई शक्तियों की क्रीड़ा रूप लहरें हैं।

प्रसरद्विन्दुनादाय शुद्धामृतमयात्मने ।
नमोऽनन्त प्रकाशाय शंकरक्षीर सिन्धवे ।१५।

उस शंकर रूप क्षीर सागर को नमस्कार हो जिस में नाद और बिन्दु रूप ज्ञान और क्रिया शक्तियां भरी हैं, जो शुद्ध परमानन्द स्वरूप से पूर्ण है और जो पृथ्वीसे शिव तक सारे जगत के प्रकाश रूप है ।

विश्वैकरूपविश्वात्मविश्वसर्गादिकारणम ।
पर प्रकाशवपुषं स्तुमः स्वच्छन्द भैरवम् ।१६।

जो विश्व के साथ एक रूप है विश्व ही जिस का स्वरूप हैं जो विश्व का सृष्टि, स्थिति, संहार, लय और प्रतुग्रह रूप पंच कृत्य करता है जो उत्कृष्ट चित्प्रकाश स्वरूप है, ऐसे स्वतंत्र भैरव (शिव) की हम स्तुति करते हैं ।

जयन्ति जगदानन्दविपक्ष क्षपणक्षमाः ।
परमेशमुखोद्भूत ज्ञानचन्द्रमरीचयः ।१७।

परमेश्वर (परमशिव) के मुख से उत्पन्न हुई ज्ञान रूप चन्द्रमा की किरणों की जय हो जो जगदानन्द के रूप उल्टे पत्त को हटाने में समर्थ हैं।

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः।
परादि शक्तिरूपेण स्फुरन्ती संविदं नुमः॥१८॥

हम संवित् भगवती को नमस्कार करते हैं जो विश्वमय होते हुए भी विश्वोत्तीर्ण है, जो परमेश्वर का सार रूप है और जो परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी रूप वाणियों (शक्तियों) के द्वारा जगत् रूप से प्रकट होती है।

नमः शिवाय सततं पञ्चकृत्य विधायिने।
चिदानन्दघनस्वात्मपरमार्थावभासिने॥१९॥

नित्य सृष्टि आदि पांच कामों के करने वाले और चित् और आनन्दपूर्ण अपने स्वरूप के प्रकट करने वाले शिवको सदा ही नमस्कार हो।

अकुलस्यास्य देवस्य कुलप्रथनशालिनी।
कौलिकी सा परा शक्तिरवियुक्तो यया प्रभुः॥२०॥

३६ तत्व रूप कुल से परे इस क्रीडा, शील देव (शिव) की कुल को प्रकट करने के कारण शोभायमाम कौलिकी नाम की परा शक्ति है जिस से प्रभु शिव सदा ही अभिन्न रहता है।

चतुर्दशयुतं भद्रे तिथीशान्तसमन्वितम् ।
तृतीयं ब्रह्म सुश्रोणि हृदयं भैरवात्मनः ।२१।

हे देवी ! चौदहसहित (पखवाडे के पहले चौदह दिन) तिथियों के अन्त (अमावसी) समेत जो नर रूप तीसरा ब्रह्म है, हे सुन्दर मध्यभागवाली ! वही मुक्त भैरव का हृदय है ।

आद्यन्तरहितं बीजं विकसत्तिथिमध्यगम् ।
हृत्पद्मान्तर्गतं ध्यायेत् सोमांशं नित्यमभ्यस्येत् ।२२।

आदि और अन्त रहित बीज (अकार) जो विकास में आई हुई तिथियों के बीच व्याप्त है, का ही हृदय रूप कमल में गया हुआ जानकर, उसी चंद्रमा के अंश (अमृत रूप) का नित्य विमर्श करना चाहिए ।

रक्षणीयंवर्धनीयं बहुमान्यमिदं प्रभो ।
संसारदुर्गतिहरं भवद्भक्ति महाधनम् ।२३।

हे प्रभो ! आप का भक्ति रूप महाधन रक्षा करने और बढाने योग्य है, और बहुत ही मान के योग्य है,यह जन्म मरण रूप संसार की दुर्गति से भक्त को बचाता है ।

सर्वशंकाशनिं सर्वालक्ष्मी कालानलं तथा ।
सर्वामंगल्यकल्पान्तं मार्गं माहेश्वरं नुमः ।२४।

महेश्वर (परमशिव) के शाक्तमार्ग को नमस्कार हो जो सभी शंकाओं को मिटाने में बिजली जैसा, सभी दुर्भाग्यों को दूर करने के लिए कालाग्निरुद्र जैसा और सभी अमंगल अवस्थाओं के लिए कल्पान्त है।

यस्मिन् सर्वंयतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नमः।२५।

मैं उस सर्वात्मरूप शंकर को नमस्कार करता हूं जिस शंकर में यह सारा विश्व ठैहरा है, जिस में से यह सभी निकलता है, जो इस सारे जगत के रूप है और जो सब ओर से प्रकट है और जो सर्वमय है।

तद्देवताविभवभाविमहामरीचि-
चक्रेश्वरायत निजस्थितिरेक एव।
देवीसुतो गणपतिः स्फुरदिन्दुकान्तिः
सम्यग्समुच्छलयतात्ममसंविदब्धिम्॥

देवी परांशक्ति का एक ही अद्वितीय पुत्र, इन्द्रिय रूप शक्ति समूह का स्वामी, गणपति मेरे संवित्सागर को विकसित करे, कैसा है वह गणपति! उन भिन्न २ इन्द्रिय शक्ति रूप देवताओं के बनाए ऐश्वर्य से बनाये बडे शक्ति चक्र का स्वामी, अपने अहन्ता रूप पर की हुई स्थिति वाला और चन्द्रमा की दीप्ति वाला। वटुक भी ऐसा ही है। गणपति अपान की चपान व्याप्ति है और वटुक की प्राण व्याप्ति है।

विश्वत्रभावपटले प्रविजृम्भमाण-
विच्छेद शून्यपरमार्थ चमत्कृतिर्या ।
तां पूर्णवृत्यहमिति प्रथनस्वभावां
स्वात्मस्थितिं स्वरसतः प्रणमामि देवीम् ॥

सारे विश्व में पदार्थ समूह में विकसित निरन्तर छेद रहित जो परमार्थ (पराहंता) के चमत्कार रूप जो चिच्छक्ति है, उसी परिपूर्णवृत्ति को जो पराहंता के रूप से प्रकट होने के स्वभाव वाली है, अपने ही चित्स्वरूप पर स्थित जगत की सृष्टि संहार आदि क्रीडा स्वभाव वाली देवी को मैं प्रणाम करता हूं।

चैतन्यपूरितमिदं निखिलं हि विश्वम
चित्तं चिदात्मनि यदास्तमुपैति शश्वत् ।
एवंचितेरपृथगेव स्वसंस्थितत्वात्
उक्तो निरस्त करण परम समाधिः ॥

यह सारा विश्व चैतन्य से परिपूर्ण है, जिस समय चित्-स्वरूप में लयहोकर नित्य तद्रूप हो जाय, तो इस प्रकार चिति भगवती के साथ अभिन्नभाव से अपने ही अहं स्वरूप पर स्थित होने के कारण इसी अवस्था को 'समाधि' के नाम से पुकारा जाता है जिस में इन्द्रियां अस्त नही हुई हैं बल्कि अपने अपने वेद्य के साथ अभिन्न भाव से व्यवहार करती हैं।

स्वातंत्र्य शक्तिः क्रमसंसिसृक्षा
क्रमात्मता चेति विभोर्विभूतिः ।
तदेव देवी त्रयमन्तरास्ता-
मनुत्तरं मे प्रथयत्स्वरूपम् ॥

स्वतंत्रता आदि अनन्त शक्तियों वाले शिव देश, काल आदि क्रम को उत्पन्न करने की 'इच्छा' शक्ति, क्रमरूपता अर्थात भेद प्रधान उन अनन्त आभासों से मिला हुआ संकुचित स्वरूप वाला 'नर' इस प्रकार 'नर' शक्ति, शिव रूप व्यापक परमेश्वर की विभूति है, इस प्रकार इन तीन देवियों के स्वरूप वाला शिव अपने अनुत्तर अर्थात सर्वज्ञता आदि शक्तियों के स्वरूप को प्रकट करके मेरे अन्तरात्मा में मेरेसाथ अभिन्न भाव से प्रकट रहें ।

परं परस्थं गहनादनादि-
मेकं निविष्टं बहुधा गुहासु ।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं
त्वामेव शंभुं शरणं प्रपद्ये ॥

मैं आप शम्भु कल्याण की भूमि को नमस्कार करता हूं जो माया तत्व से परे (दूर) ठहरे हैं, अनादि हैं अद्वितीय एक ही होते हुए भी अनेकों प्रकारों से हृदय रूपी गुफाओं में वास करते हैं सब का आश्रय हैं और सब स्थावर जंगम पदार्थों में ठहरे हैं ।

क्लेशान्विनाशय विकासय हृत्सरोज-
मोजो विजृंभय निजं नरिनर्तयाङ्गम् ।
चेतश्चकोर चिति चन्द्रमरीचिचक्र-
माचम्य सम्यगमृतीकुरु विश्वमेतत् ॥

हे बुद्धिरूप चकोर ! मेरे क्लेशों का नाशकर, मेरे हृदय रूपी कमल को खिलने में लाओं, अपने प्रकाश को चमकाओ, अंगों को नचाओ, चितिरूपी चन्द्रमा की किरणों के समूह का स्वाद करके (पीकर) सारे विश्व को अमृत से भर दो ॥

प्रकाशमानेपरमार्थभानौ
नश्यत्यविद्या तिमिरे समस्ते ।
तदा बुधा निर्मलदृष्टयोऽपि
किंचिन्न पश्यन्ति भव प्रपञ्चम् ॥

जिस समय परमार्थरूप सूर्य (चित्सूर्य) चमकता हो अज्ञान रूप अंधेरे का पूरी तरह नाश हो, उस समय बुद्धिमान ज्ञानवान पुरुष, निर्मल दृष्टि वाले पुरुष संसार के भेदमय प्रपंच को कुछ भी नहीं देखते । उन का भेदभाव मिट जाता है ।

प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात्
स च प्रकाशो न पृथक विमर्शात् ।

नान्यो विमर्शोऽहमिति स्वरूपात्
अहं विमर्शोऽस्मि चिदेक रूपः

प्रकट पदार्थ प्रकाशमान होने के कारण प्रकाश से भिन्न नहीं और वह प्रकाश भी विमर्श के बिना कोई सत्ता नहीं रखता विमर्श भी अहं रूप से भिन्न नहीं, इस लिए 'अहं' विमर्श केवल चित्रूप ही है।

भवन्मय स्वात्मनिवास लब्ध-
सम्पद्‌भराभ्यर्चितयुष्मदंघ्रिः
न भोजनाच्छादनमप्यजस्र-
मपेक्षतेयस्तमहं नमामि ॥

आपके रूप अपने चित्स्वरूप में विश्रांति पाने से प्राप्त की बड़ी परमानन्दरूपी सम्पदा से जो भक्त आपके चरणों की पूजा करता है और उनका ही निरंतर आश्रय लिये रहता है और जिसे भोजन, वस्त्रादि किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं, मैं ऐसे ही भक्त की शरण लेता हूँ।

निर्मानमोहा जितसंग दोषा-
अध्यात्मनित्या विनिवृतकामाः
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःख संज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥

जिन पुरुषों का देहाभिमान और मोह दूर हो गया है, जिन्होंने वेद्यों के संग के दोषों को जीत लिया है, जो नित्य ही आत्मपरायण हैं, जिन्होने सभी अभिलाषाओं का त्याग किया है, जिन्होंने सुख, दुःख आदि नाम वाले द्वन्द्वों का त्याग किया है, ऐसे ही बुद्धिमान पुरुष उस परमात्मा रूपी अविनाशी पद को प्राप्त कर सकते हैं।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेद विदेव चाहम ॥

मैं (अहं रूप) सब के प्रकाश विमर्श रूप हृदय में ठहरा हूं, मेरे ही सामर्थ्य से ज्ञान, स्मृति और अपोहन शक्तियां काम करती हैं, वेद तथा सभी शास्त्र मेरे (अहं रूप के) ही स्वरूप का ज्ञान कराते हैं, (निर्णय करते हैं) वेदान्त का बनाने वाला और वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूं।

अथ द्वादशा काली :-

कौलार्णवानन्दघनोर्मिरूपा-
मुन्मेषमेषोभयभाजमन्तः।
निलीयते नील कुला लयेया
तां सृष्टिकालीं सततं नमामि ॥

मैं उस सृष्टिकाली (संविद्देवी) को नमस्कार करता हूँ जो ३६ तत्व रूप कुल रूप सागर की आनन्दभरी लहर अर्थात प्रथम स्पन्द रूप है, और जो अपने ही स्वरूप में उन्मेष और निमेष (विकास और संकोच) का अभ्यास करती है और जो नील पीतादिक प्रमेयवर्ग में लय हो जाती है, मैं अपनी शरीरादिक की परिमित अहंता को उसी संवित् भगवती में लीन करके उसी में समाविष्ट हो जाता हूँ ।१।

महा विनोदार्पितमातृचक्र-
वीरेन्द्रकासृग्रस पान सक्ताम् ।
रक्तीकृतां च प्रलयात्यये तां
नमामि विश्वाकृतिरक्तकालीम् ॥२॥

बडे आनन्द से पूर्ण, परमयोगीजनों के करणेश्वरी रूप योगिनियों की जिस मेलाप की अवस्था में चिदमृतरस के पीने में लगी हुई, और प्रलय के अन्त पर विश्व के उन्मेष दशा में विश्वाकार बनी हुई, विश्व के रंग में रंगी हुई संवित् रूप काली को मैं नमस्कार करता हूँ ।२।

वाजिद्वयस्वीकृतवातचक्र-
प्रक्रान्त संघट्टगमागमस्थाम् ।
शुचिर्ययास्तं गमितोर्चिषा तां
शान्तां नमामि स्थिति नाश कालीम् ॥३॥

मैं उस शान्त निर्विकल्प स्थिति नाश काली को नमस्कार करता हूँ जिस ने अपनी चिद्दीप्ति से मितप्रमातृभाव को अपने स्वरूप में अस्त किया है और जो प्राण अपान रूप दो घोडों से अपने अधीन किये हुए वायु चक्र के श्वास उच्छ्वास चक्र के आने जाने की अवस्था में लगी है ।३।

सर्वार्थ संकर्षण संयमस्य
यमस्य यन्तुर्जगतो यमाय ।
वपुर्महाग्रास विलास रागात्
संकर्षयन्तीं प्रणमामि कालीम् ॥४॥

सभी पदार्थों को नियत रूप देने वाले विकल्प रूप यम और इस यम रूप के नियमन करने वाले मित प्रमाता, दोनों को जो पर प्रमातृरूपा काली जगत का नियमन करने के लिए महाग्रास और महा विलास रूपी अपनी आनन्दरस लीला से संकर्षण अर्थात उल्लेख करली है, उसी यमकाली को मैं प्रणाम करता हूँ ।४।

उन्मन्यनन्ता निरिवलार्थगर्भा
या भाव संहारनिमेषमेति ।
सदोदितां सत्युदयाय शून्यां
संहारकालीं मुदितां नमामि ॥५॥

जो परा देवी सभी विकल्पों का संहार करने से उन्मना रूप है, जो सभी वेद्य पदार्थों को अपने स्वरूप में रखने से अनन्त है जो पदार्थों को संहार करने से निमेष की अवस्था को प्राप्त होती है, जो नित्योदित होकर भी बहिःस्फार रूप उदय से शून्य है, उसी आनन्द से पूर्ण संहार काली को मैं नमस्कार करता हूं, देह प्रमातृभाव को उसी में लय करके उसी में समावेश करता हूं ।५।

ममेत्यहङ्कारकलाकलाप
विस्फारहर्षोद्धतगर्वमृत्युः ।
ग्रस्तो यया घस्मर संविदंतां
नमाम्य कालोचित मृत्युकालीम् ॥६॥

"मैंने इस सारे प्रमेय समूह को अपने स्वरूप में लीन किया है" ऐसे अहंकार समूह से बनी स्वात्मानन्द रूपी हर्ष से उत्कृष्ट गर्वयुक्त मृत्यु रूपा संवित को भी जिस पारमेश्वरी संवित् भगवती ने ग्रास किया है, उसी ग्रास करने में चतुर कालकलना से रहित मृत्युकाली रूपा संविदेवी को मैं नमस्कार करता हूँ ।६।

विश्वं महाकल्पविरामकल्प-
भवान्त भीमभ्रुकुटिं भ्रमन्त्या ।
याश्नात्यनन्त प्रभवार्चिषा तां
नमामि भद्रां शुभ भद्र कालीम् ॥७॥

महा कल्पान्त के सदृश संहार अवस्था में भयंकर भ्रकुटियों को नचाती हुई, अनन्तसामर्थ्य वाली जो चिदीश्वरी अपनी चिद्रूपदीप्तियों से इस प्रमेय प्रमाण रूपी समस्त विश्व को ग्रास करती है, उसी कल्याणमयी भद्रकाली को मैं नमस्कार करता हूँ, उसी के रूप में समावेश करता हूँ ।७।

मार्तण्डमापीत पतंग चक्रं
पतंगवत्कालकलेन्धनाय ।
करोति या विश्वरसान्तकां तां
मार्तण्ड कालीं सततं प्रणौमि ।८।

जो संविद्भगवती सूर्य अर्थात अहंकार रूप प्रमाता को बारह इन्द्रिय रूप पतंगों को अपने स्वरूप में ऐसे लीन करने के योग्य बनाती है जैसे एक पतंगा अपने आप एक दीपक पर अपने आप को जलाता है, उसी शब्दादि विषयों के रस को अपने स्वरूप में लीन कराने वाली मार्तण्ड काली को मैं प्रणाम करता हूँ, अपनी मित अहंता को उसी में लीन करके उसी चिच्छक्ति में समावेश करता हूँ ।८।

अस्तोदित द्वादशभानु भाजि
यस्यां गताभर्गशिखा शिखेव ।
प्रशान्त धाम्नि द्युति नाशमेति
तां नौम्यनन्तां परमार्क कालीम् ।९।

प्रमाण प्रमेय क्षोभरहित और इस लिए शान्त उदय, और अस्त करने वाले बारह इन्द्रिय रूप सूर्यों को अपने स्वरूप में लय करने वाली तथा लय करके उनका चमत्कार लेने वाली अनन्तदीप्तियुक्त परमार्ककाली को मैं उसी के स्वरूप में लीन होने के लिये नमस्कार करता हूं, जिस के तेज में भर्गशिखा नाम अहंकार रूप समा जाता है ।६।

कालक्रमाक्रान्त दिनेश चक्र-
क्रोडीकृतान्ताग्निकलाप उग्रः ।
कालाग्नि रुद्रोलयमेति यस्यां
तां नौमि कालानलरुद्रकालीम ॥१०॥

कालक्रम से घेरे हुए सूर्यचक्रद्वारा स्वात्ममय बनाया हुआ अग्निसमूह रूप तेजस्वी कालाग्निरुद्र भी जिस में लय हो जाता है, उसी कालाग्निरुद्र नाम वाली काली, संविद्देवी को मैं नमस्कार करता हूं, अपनी मित, अहंता को उसी में लय करके उसके एकता प्राप्त करता हूं ।१०।

से

नक्तं महा भूतलये श्मशाने
दिक्खेचरी चक्रगणेन साकम् ।
कालीं महाकालमलग्रसन्तीं
वन्दे ह्यचिन्त्यामनिलान लाभाम् ॥११॥

पंच महाभूतों के लय होजाने के कारण श्मशान जैसी अवस्था में वाह्य प्रकाश के न होने के कारण रात को, दिक्चरी तथा खेचरी गणों (अन्तःकरणों तथा वहिष्करणों) को साथ लेकर जो काली देवी संविद्देवी महाकाल को भी ग्रास करती है, और जो वायु और अग्नि के समान अचिन्त्य दीप्तियुक्त है, उसी को मैं नमस्कार करता हूं ।११।

क्रमत्रय त्वाष्ट्र मरीचिचक्र
संचार चातुर्य तुरीयसत्ताम् ।
वन्दे महा भैरव घोर चण्ड-
कालीं कलाकाशशशाङ्क कान्तिम् ॥१२॥

प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय रूप तीन क्रमों से प्रकाशमान सूर्य मण्डल में संचार करने की चतुरता से जिस चिच्छक्ति ने तुरीय सत्ता को धारण किया है और जिस की अमाकला चिदाकाश में चन्द्रमा की तरह चमकती है, उसी महा भैरव घोर चण्ड काली को मैं नमस्कार करता हूँ अपने परिमित प्रमातृभाव को उसी में लय कर के उस से एकता प्राप्त हूँ ।१२।

इति द्वादशकाली समाप्त ॥

विद्यां परां कतिचिदम्बरमम्बकेचि-
दानन्दमेवकतिचित्कतिचिच्चमायाम् ।
त्वां विश्वमाहुरपरे वयमामनाम
साक्षादपार करुणां गुरुमूर्त्तिमेव ॥

हेमाता ! कुछ भक्त आप को पराज्ञानरूप, कुछ चिदाकाश-रूप, कुछ आनन्दरूप और कुछ जगत रूप ही कहते हैं, परन्तु हम आप को प्रत्यक्ष अपार दया रूप गुरु का रूप ही कहेंगे।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रहरिचन्द्रसहस्त्ररश्मि-
स्कन्दद्विपाननहुताशनवन्दितायै।
वागीश्वरि ! त्रिभुनेश्वरि ! विश्वमात-
रन्तर्बहिश्चकृतसंस्थितये नमस्ते॥

हे वाणियोंकी स्वामिनी परा रूपिणी, हे तीनों भुवनों की स्वामिनी, हे जगत की माता आप, ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, कुमार, गणेश अग्नि से प्रणाम किये गये चरणों वाली, और अन्तः करणों तथा बहिष्करणों में स्थित आप को नमस्कार हो।

★★

—: भैरव स्तोत्रम् :-

व्याप्तचराचरभाव विशेषं
चिन्मयमेकमनन्तमनादिम्
भैरव नाथमनाथ शरण्यं
त्वन्मयचित्ततयाहृदिवन्दे॥१॥

स्थावर जंगम में व्याप्त विशेष सत्ता को जो चैतन्य रूप अद्वितीय अनन्त अनादि है, जो भैरव रूप और अनाथों की

रक्षा करने वाली है, मैं ऐसे आपके स्वरूप को आपके साथ अपना चित एक रूप करके, अपने हृदय में नमस्कार करता हूँ ।१।

त्वन्मयमेतदशेषमिदानीं
भाति मम त्वदनुग्रहशक्त्या ।
त्वं च महेश ! सदैव ममात्मा
स्वात्ममयं मम तेन समस्तम ।२।

हे महेश ! आप की अनुग्रह शक्ति से मुझे अबयह सारा जगत आप से अभिन्न दिखाई देता है, आप ही सदा मेरी आत्मा हैं, इस कारण मुझे सारा विश्व अपना ही स्वरूप है ।२।

स्वात्मनि विश्व गते त्वयि नाथे
तेन न संसृतिभीति कथास्ति ।
सत्स्वपि दुर्धरदुःखविमोह-
त्रासविधायिषु कर्मगणेषु ।३।

आपके ही स्वरूप बना हुआ यह विश्व मुझे अपने ही स्वरूप होने के कारण मुझे नाम मात्र को भी जन्म का भय नहीं है । यद्यपि दुःसह दुःख, मोह, भय देने वाले पूर्व कर्मों के समूह हों भी ।३।

अन्तक ! मां प्रति मादृशमेनां
क्रोधकरालतमां विदधीहि ।

शंकरसेवन चिन्तनधीरो
भीषणभैरवशक्तिमयोऽस्मि ॥४॥

हे काल ! मेरी ओर अपनी यह क्रोधभरी भयानक दृष्टि मत डाल, शंकर का स्मरण तथा विमर्शन करने से मैं धैर्यवान और भैरव की भयानक शक्ति वाला बन गया हूँ ।४।

इत्थमुपोढ भवन्मयसंवि-
द्दीधिति दारित भूरितमिस्रः ।
मृत्युयमान्तक कर्मपिशाचै-
र्नाथ ! नमोऽस्तु न जातुबिभेमि ॥५॥

इस प्रकार आप संबन्धी संवित् भगवती की किरणों से नष्ट किये हुए अज्ञान रूप अंधकार वाला मैं मृत्यु, यम, काल जैसे कर्म पिशाचों से हे नाथ ! नहीं डरता हूं, आपको नमस्कार हो ।५।

प्रोदित सत्य विबोधमरीचि
प्रोक्षितविश्व पदार्थ सतत्वः ।
भावपरामृतनिर्भरपूर्णे
त्वय्यहमात्मनि निर्वृत्तिमेमि ।६।

मुझे सच्चे ज्ञान की किरणें उदय में आ गई हैं, समस्त पदार्थों का समूह निर्मल चिद्रूप हो गया है, मैं अपने ही चि-

त्स्वरूप में जो चित् अमृत पूर्ण सभी पदार्थों से पूर्ण आपका ही पारमार्थिक स्वरूप है, मैं आनन्द को प्राप्त करता हूँ ।६।

मानसगोचरमेति यदैव
क्लेशदशातनु ताप विधात्री ।
नाथ ! तदैव ममत्वदभेद-
स्तोत्रपरामृतवृष्टिरुदेति ।७।

बडे सन्ताप को देने वाली क्लेश की दशा जब मेरे मन का विषय बनती है, हे स्वामी ! उसी समय आप के अभेद रूप स्तोत्र की अमृतवर्षा भी करती है ।७।

शंकर ! सत्यमिदं व्रत दान-
स्नानतपो भवतापविनाशि ।
तावक शास्त्र परामृतचिन्ता
सिन्धति चेतसि निर्वृति धारा ॥८॥

हे शंकर ! यह सत्य है कि व्रत धारण करना, दान देना तीर्थ स्नान करना, तप आदि संसार के दुःखों का नाश करते हैं, परन्तु आप से संबन्धी शास्त्र रूपी अमृत का विमर्श करने से अन्तःकरणों में आनन्द की धारा बहती है ।८।

नृत्यति गायति हृष्यतिगाढं
संविदियं मम भैरवनाथ ।

त्वां प्रियमाप्य सुदर्शनमेकं
दुर्लभमन्यजनैः समयज्ञम् ॥९॥

हे भैरव नाथ ! यह मेरी संवित् आप अति प्रिय, अति सुन्दर, अद्वितीय और मेरे समान किये हुए यज्ञों वाले किसी दूसरे पुरुष से न पाये जा सकने योग्य आप को पाकर, आप में समाविष्ट होकर नाचती है, गाती है और घने आनन्द का चमत्कार पाती है ।९।

वसु रसपौषे कृष्ण दशम्या-
मभिनवगुप्तः स्तवमिदकरोत् ।
येन विभुर्भवमरुसन्तापं
शमयति झटिति जनस्य दयालुः ॥१०॥

श्री अभिनव गुप्त ने इस स्तोत्र को वसु (८) रस(६) पौष (९) अर्थात् संवत् ९६८ के पौष मास के कृष्ण पक्ष की दशमी के दिन रचा, जिस स्तोत्र के पढने से दयालु शंकर संसार रूपी मरुस्थल की यात्रा के संकट को झट पट शान्त कर देते हैं ।१०।

हरिरेव जगज्जगदेव हरिः
हरितोजगतो न हि भिन्नमणुः ।
इति यस्यमतिः परमार्थगतिः
स नरो भवसागरमुत्तरति ॥

हरि ही जगत है और जगत ही हरि है, हरि और जगत में अंशमात्र भी भेद नहीं है जो पुरुष इस परमार्थ को मानता है, वह ही परमार्थ को जानता है, और वह सहज ही इस संसार सागर से पार लंघ जाता है।

आदावन्ते चिद्रस रूपं
मध्येचिद्रस बुद्बुदरूपम्।
भातं भातं भा रूपं स्यात् नो
भातं चेन्नि तरां न स्यात्॥

यह सारा प्रपंच आदि और अन्त में चिद्रस रूप ही है, केवल मध्य में जगत रूप भेदमय बुलबुला सा है, जो भिन्न दिखाई देता हुआ भी वास्तव में चिद्रूप ही है, बार बार इसका विमर्श करने से इस प्रकाश रूप से तन्मय हो जाना चाहिए, यदि यह भेदमय जगत प्रकट न हो तो प्रकाश से भिन्न होने के कारण इस भेद की सत्ता ही नहीं।

ओं शन्नो मित्रः शंवरुणः शन्नो भवत्वर्यमा, शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः, नमो ब्रह्मणे नमो वायवे नमस्ते वायो त्वमेवप्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारं, शान्तिः, शान्तिः शान्तिः॥

सूर्य हमारा कल्याण करे, चन्द्रमा हमारा कल्याण करें, नक्षत्र हमारा कल्याण करें, इन्द्र और बृहस्पति हमारा कल्याण करें, बड़े बलवाला विष्णु हमारा कल्याण करे, ब्रह्म को नमस्कार हो, प्राण वायु को नमस्कार हो, हे प्राणवायो, आपको नमस्कार, आप प्रत्यक्ष रूप से ब्रह्म हैं, मैं आप प्रत्यक्ष ब्रह्म का विमर्श करता हूं, सत्य परमार्थ का विमर्श करता हूँ, विश्वरूप का विमर्श करता हूं, इस कारण मेरी रक्षा कीजिये, इस कहने वाले की रक्षा करो, मुझ उच्चार करने वाले की रक्षा करो, तीनों स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरों को शान्ति प्राप्त हो।

ओं सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै। शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ॥

एक साथ हम दो (गुरु, शिष्य) की रक्षा कर, एक साथ हम दो का भोग हो, एक साथ हम दो का चित् बल बड़े, हम दोनों तेजस्वियों का विमंश किया हुआ हो, हम किसी से द्वेष न करें, तीनों शरीरों को शान्ति प्राप्त हो।

ओं शन्नो मित्रः शंवरुणः

शन्नोऽस्त्वर्यमा, शन्न इन्द्रश्चाग्निश्च, शन्नोविष्णु-रुरुक्रमः नमो ब्रह्मणे नमो वायवे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म अवादिषं ऋतमवा-दिषं सत्यमवादिषं, तन्मामावीत् तद्वक्तारमावीत् आवी-

न्मामावीत् ववतारं, शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः ।

मैं आप प्रत्यक्ष ब्रह्मका विमर्श करवाता हूँ, सत्य परमार्थ का विमंश करवाता हूँ सत्य स्वरूप का विमर्श करवाता हूँ, वह मुझ में समावेश करे, उस के विमर्श करने वाले में समावेश करे, मेरा विमर्श करे । तीनों शरीरों को शान्ति हो ॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै, तेजस्विनाव धीतमस्तु मा विद्विषाव है, शान्तिः, शान्तिः शान्तिः ॥

एक साथ हम दो (गुरु, शिष्य) की रक्षा कर, एक साथ हम दो का भोग हो, एक साथ हम दो का चित् बल वडे, हम दोनों तेजस्वियों का विमंश किया हुआ हो, हम किसी से द्वेष न करें, तीनों शरीरों को शान्ति प्राप्त हो ।

ओं यतो वा इमानि भूतानि जायंते येन जातानि जीवन्ति यं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति तज्जिज्ञासस्व तदेव ब्रह्म ॥

जिस स्वरूप से यह सब जड चेतन पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिस सत्ता से उपज कर जीते हैं, और जिस में प्रवेश करते और विश्रान्ति पाते हैं, उसी स्वरूप को जानने की इच्छा करो, वही ब्रह्म का स्वरूप है ॥

सतो वा इमानि भूतानि जायंते सति जातानि जीवन्ति सन्तं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति सदेव ब्रह्म ॥

यह सब जड चेतन पदार्थ सत् स्वरूप से उत्पन्न होते हैं, सत् रूप में उपज कर जीते हैं, और सत् रूप में ही प्रवेश करते हैं और विश्रान्ति पाते है, सत् ही ब्रह्म का स्वरूप है।

चितो वा इमानि भूतानि जायंते चिति जातानि जीवन्ति चितं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति चिदेव ब्रह्म ॥

यह सब जड चेतन पदार्थ चित्स्वरूप से उत्पन्न होते हैं, चित् रूप में उपजकर जीते और चित्रूप में ही प्रवेश करते हैं और विश्रान्ति पाते हैं, चित् ही ब्रह्म का स्वरूप है।

आनन्दात् खलु इमानि भूतानि जायंते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्ति अभिसंविशन्ति आनन्दं ब्रह्म ॥

यह सब जड चेतन पदार्थ आनन्दरूप से उत्पन्न होते हैं, आनन्द रूप में उपज कर जीते हैं और आनन्द रूप में ही प्रवेश करते हैं और विश्रान्ति पाते हैं, आनन्द ही ब्रह्म का स्वरूप है।

मत्तो वा इमानि भूतानि जायंते मयि जातानि जीवन्ति मां प्रयन्ति अभिसंविशन्ति अहमेव ब्रह्म ॥

यह सब जड चेतन पदार्थ मुझ (अहं रूप) से उत्पन्न होते हैं मुझ (अहं रूप) में उपजकर जीते हैं और मुझ (अहं रूप) में ही प्रवेश करते हैं और विश्रान्ति पाते हैं, मैं ही ब्रह्म स्वरूप हूँ। ब्रह्म अहं स्वरूप है।

आत्मक्रीडा आत्मरुचिः क्रियावान् य एष ब्रह्मवि-
विद्वान् वरिष्ठः, यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥

जो यह ब्रह्म का जानने वाला उत्तम, क्रिया शक्ति शाली पुरुष है यह अपने आत्मस्वरूप में ही क्रीडा करता, अपने चित्स्वरूप में ही रुचि रखता है, जिस पर यह अपना अनुग्रह करे उसे ही प्राप्त होता है और उसी पुरुष को यह आत्मा अपना स्वरूप प्रकट करता है ॥

ददातीष्टान्भोगान्क्षपयति रिपून् हन्ति विपदो
दहत्याधीन् व्याधीन् शमयति सुखानि प्रतनुते ।
हठादन्तर्दुःखं दलयति पिनष्टीष्टविरहं
सकृद्ध्याता देवी किमिव निरवद्यं न कुरुते ॥

एक ही बार (निरन्तर प्रवाहरूप) ध्यान की हुई देवी चाहे हुए भोगों को देती है, शत्रुओं कानाश करती है, आपत्तियों को दूर हटाती है, मन के रोगों को जलाती है, शरीर के रोगों को शान्त करती है, सुखों को विस्तारती है, अन्तः करणों के दुःखों को जोर से नष्ट करती है, प्यारों के वियोग को पीसती है (उन से मेल कराती है) भला वह कौन सी बात है जिसे देवी दोष रहित प्रकार से सिद्ध नहीं करती ॥

सुधा सिन्धोर्मध्ये सुरविटपि वाटी परिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ते त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम ॥

अमृत के सागर के बीच कल्प वृक्षों की वाटिका से घिरे हुए मणि रत्नों के टापू पर कदम्बवृक्षों युक्त चिन्तामणि रत्नों से बने घर में शिवरूप मञ्च (उच्च स्थान) पर परमशिव रूप पलंग पर विराजमान चित् और आनन्द की लहरी रूप ऐसे आप के स्वरूप का कुछ विरले ही पुरुष भक्तजन ध्यान करते हैं ॥

मनुष्यास्तिर्यञ्चो मरुत इति लोकत्रयमिदं
भवाम्बोधौ मग्नं त्रिगुण लहरी कोटिलुठितम् ।
कटाक्षश्चेदत्र क्वाचन तव मातः ! करुणया
शरीरी सद्योऽयं व्रजति परमानन्दतनुताम् ॥

मनुष्य, पशु पक्षी आदि, देवता समूह, इस प्रकार यह तीन लोकों का समूह सत्त्व, रज, तम तीन गुण रूप की करोडों लहरों से व्याकुल बना हुआ संसार सागर में डूबा हुआ है, हे माता ! इन में से किसी एक पर यदि आप की अनुग्रह की दृष्टि हो, तो वह जीव तत्क्षणात् परमानन्द स्वरूप भाव को प्राप्त होता है ॥ (जाग्रत प्रमाता, स्वप्न प्रमाता, सुषुप्ति प्रमाता) ॥

तडिद्वल्लीं नित्याममृतसरितं पाररहितां
मलोत्तीर्णां ज्योत्स्नां प्रकृतिमगुणग्रंथिगहनाम् ।
गिरां दूरां विद्यामविनतकुचां विश्वजननी
मपर्यन्तां लक्ष्मीमभिदधति संतो भगवतीम् ॥

भले (परमार्थ के जानने वाले) पुरुष देवी को बिजली की लता रूप परन्तु अचल, अपार चिदमृत की नदी रूप, मल-रहित चांदनी रूप, गुणों की ग्रंथियों रहित प्रकृति रूप, वाणियों से परे सभी ज्ञान रूप, न झुके हुए ज्ञान क्रिया रूप स्तनों वाली जगत की माता रूप, सीमारहित लक्ष्मी रूप इन इन अनेकों नामों से पुकारते हैं ॥

असंख्यैः प्राचीनैर्जननि! जननैः कर्मविलयात्
गतेजन्मन्यन्त्ये गुरुवपुषमासाद्यगिरिशम् ।
अवाप्याज्ञां शैवीं क्रमतनुरपि त्वांविदितवा-
न्नयेयंत्वत्पूजास्तुति विरचनेनैव दिवसान् ॥

हे माता ! पिछले असंख्य जन्मों द्वारा किये कर्मों के नष्ट होने पर (जीवन्मुक्त दशा प्राप्त करके भी) गुरुवर के स्वरूप शिव को प्राप्त करके (साक्षात्कार करके) शिवरूप सिद्धान्त को (अद्वैत चैतन्य मार्ग) पाकर उसका मनन तथा निधिध्यासन करके, सक्रम (मनुष्य) शरीर धारण करता हुआ भी आपको जानता रहूँ और तुम्हारी पूजा तथा स्तुति इत्यादि के बनाने और करने में ही इस जन्म के शेषदिन व्यतीत करूं (यही मेरी प्रार्थना है) ॥

अथ गुरुस्तुति :-

प्रसन्नैक चित्तं दया सान्द्रमन्तः
प्रकामंहितं श्री शिवप्रेष्टगोत्रम ।
शिवाद्वैतसिद्धान्तविश्रान्तिक्षेत्रं
स्वतन्त्रं भजे सद्गुरुं रामचन्द्रम् ॥१॥

आणवादि मलों के स्पर्शरहित होने के कारण एकाग्रचित वाले, घनी दया से पूर्ण, अपने भक्तजनों के लिए अत्यन्त हित-कारी, उपमन्यु गोत्रवाले, शिव के अद्वैत सिद्धान्त (त्रिकमत) पर विश्रान्ति के सिद्धस्थान, स्वतन्त्रसद्गुरु जडचेतन रूप विश्वरूप से क्रीडा करने वाले, शीतल तथा आह्लाद दायक श्री राम नाम वाले सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूं ।१।

मृदुस्पर्शगात्रं विधुस्मेरवक्त्रं
त्रिकाम्नायनेत्रं शुकाब्धीन्दुरत्नम् ।
अमर्याद कारुण्यपात्रं पवित्रं
स्वतन्त्रं भजे सद्गुरुं रामरत्नम् ॥२॥

कोमल स्पर्श वाले अंगों युक्त, चन्द्रमा जैसे सुन्दर मुख-वाले, त्रिक मार्ग के नेता, पिता शुकदेव रूपी समुद्र से निकले चन्द्रमारूप रत्न जैसे, असीम दया के पत्र पवित्र स्वतन्त्र सद्गुरु राम रूप रत्न की मैं स्तुति करता हूँ ॥२॥

सदा स्वात्मनिष्टं स्वनिष्टापराणा-
मनेकार्त्ति कष्टापहं दृष्टतत्त्वम् ।
निजाभीष्ट दान प्रवीणं धुरीणं
स्वतन्त्रं भजे सद्गुरुं रामभद्रम् ॥३॥

सदा अपने चित्स्वरूप में स्थित, और इसी स्वरूप स्थिति के अभ्यास में लगे हुए भक्तजनों के अनेकों दुःखों और कष्टों के दूर करने वाले, जाने हुए परमार्थ वाले, तथा भक्तजनों को मनो वांछित प्रयोजन सिद्ध करने में चतुर, आत्मज्ञान का उपदेश करने का बोझ सहन करने वाले, भवरोग नाश करने वाले उत्तम स्वतंत्र राम नाम वाले सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूं, अपनी देहादि प्रमातृता को छोडकर उन में ही समावेश करता हूँ ॥३॥

भवव्यालभीतान् मिताहं निगीर्णान्
निरस्तोदयास्तान् समस्ताननीशान् ।
जनानीदृशांस्त्रातुमाविर्भवन्तं
स्वतन्त्रं भजे सद्गुरुं राममित्रम ॥४॥

सांसरिक विषय रूपी सांपों से भय भीत, शरीरादि मित अहं-ता से ग्रस्त, निरंतर जन्ममरण के चक्कर में फंसे हुए ऐसे असहाय पुरुषों को योनि योनि में भटकने से बचाने के लिए उन्हें परमार्थ ज्ञान का उपदेश करने के लिए प्रकट होने वाले स्वतंत्र मित्ररूप सद्गुरु श्री स्वामी रामजी महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ ।४।

दधानं मनोहारि सौन्दर्यमूर्ति
प्रधानं महद्भाग्यवत्सन्निधानम् ।
समाधानमन्तः सुखालम्बबुद्धेः
स्वतन्त्रं भजे सद्गुरुं राममीशम् ॥५॥

मनोहर सुन्दरता युक्त आकृति (रूप) के धारण करने वाले श्रेष्ट भाग्यवान भक्तों के लिए इष्ट धनस्वरूप खजाना जैसे, परमार्थ रूप आत्मसुख का आश्रय लेने वाली बुद्धि को स्थिर बनाने वाले स्वतन्त्र सद्गुरु श्री राम, सब ऐश्वर्य सम्पन्न गुरु देव को मैं बार बार प्रणाम करता हूं, उन्हीं में समाविष्ट होता हूँ ।५।

सुशैवागम श्रौत सिद्धान्ततत्वं
सुनिष्कृष्य कारुण्यतः सारभूतम् ।
जनेभ्यः स्वतः प्रेष्टनैजप्रदानं
स्वतन्त्रं भजेसद्गुरुं रामकोशम् ॥६॥

शैव शास्त्रों और श्रुतियों के सिद्धान्तों के अमृत रूप सार भूत परम शिव तत्त्व का अभ्यास पूर्वक निश्चय रूप से साक्षात्कार करके शाक्तमार्ग पर चलने वाले भक्तजनों पर दया के कारण उन्हें चाहे हुए अपनी पराहन्ता रूप परमशिव स्वरूप का उपदेश देने वाले स्वतंत्र सद्गुरु श्री राम रूप खज़ाने (कोश) को मैं नमस्कार करता हूँ ।६।

यदीय प्रबोधात्परं तत्त्वमाद्यं
स्वयं नित्यमाभाति चित्यन्तवासम् ।
विनिर्धूतभेदाः पदद्वन्द्वनुत्या
स्वतन्त्रंभजे सद्गुरुं राममीडयम् ॥७॥

जिन सद्गुरु महोदय के उपदेश किये हुए ज्ञान से पृथिवी तक के सभी तत्वों के आश्रय भूत परम शिव तत्त्व का प्रकाश शिष्यों के हृदय में खिल उठता है और जिनके ज्ञान किया रूप चरण कमलों की जोडी के नमस्कार मात्र से द्वैत दृष्टि और सभी मल धुल जाते हैं हैं ऐसे स्तुति के योग्य स्वतन्त्र सद्गुरु श्री राम जी महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ ।७।

यदालोकनान्नान्यदालोकनीयं
समालोक्यते लोकबाह्यैव लोकैः ।
अलोकं हिलोकस्वभावानुकूलं
स्वतन्त्रं भजे सद्गुरुं रुद्रमूर्तिम् ॥८॥

जिन सद्गुरु के दर्शन मात्र से प्राप्त किये हुए अलौकिक विमर्शयुक्त भक्तजन इस भेदमय जगत को भी शिवस्वरूप ही देखते हैं, ऐसे लोकातीत होते हुए भी सर्वसाधारण लोगों के स्वभावों के अनुकूल भी, स्वतन्त्र रुद्ररूप (सृष्टि संहार करने में समर्थ) सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूं । शरीर, प्राणादि पर मिताहंता को उन्हीं सद्गुरु में समाविष्ट हो कर लय करता हूँ ।८।

पठेदष्टकं सद्गुरोस्त्र्यक्षमूर्तेः
तथा यः पुमान् श्रद्धया संशृणोति ।
तदीयानुकम्पावशाच्छीघ्रमेव-
मजस्रं स्व साम्राज्यतामाप्नुयात् सः ॥६॥

शिव रूप श्री गुरुदेव की आठ श्लोकों की इस स्तुति को जो भी पुरुष श्रद्धापूर्वक पढ़े या सुने, वह उन्हीं गुरु-महाराज की कृपा से शीघ्र ही आत्म ज्ञान प्राप्त करके अपने शक्ति समूह पर विजय पाकर चक्रेश्वरता को प्राप्त करता है ।६।

यः सर्वात्माखिलजनविभुर्देवदेवोमहेशः
स्वातन्त्र्यस्थो ध्रुवपदगतोनिश्चलात्मा वरेण्यः ।
विश्वोत्तीर्णोभवभयहरः स्वेच्छया विश्वपूर्ण-
स्तं श्रीरामं त्रिभुवनगुरुं स्वात्मरूप नमामि ॥१॥

मैं तीनों भुवनों, भव, अभव, अतिभव के गुरु सब जड चेतन में व्याप्त होकर क्रीडनशील सद्गुरु श्री राम को जो मेरा अपना ही स्वरूप हैं नमस्कार करता हूं, कैसे हैं वह राम? उत्तर - जो सभी जड चेतन को सत्ता देने वाले, सभी जीवों में व्यापक, देवों के भी देवता, महान् ऐश्वर्य युक्त, स्वतंत्र पद पर स्थित अविनाशी तथा अटल स्वभाव वाले तथा उत्तम हैं, जगत से परे हैं और भक्तों के जन्ममरण का भय दूर करते हैं, ऐसा होते हुए भी विश्वमय भी हैं ॥१॥

यस्मादीशात् प्रसरति शिवतत्त्वप्रमृतिज्यान्तं
विश्वमेतत्परमवपुषा स्थीयते येन सम्यक् ।
यस्मिंस्तोयंइवक्रमतयालीयते वारिराशौ
त श्रीराम० ॥२॥

जिन परमशिव स्वरूप सद्गुरु ऐश्वर्यशाली सद्गुरु से यह शिव से पृथ्वी तक ३६ तत्त्वात्मक जगत सृष्टि पाता है और जिस में उत्कृष्ट स्वरूप से भली प्रकार स्थिति को प्राप्त होता है, तथा जिस में क्रमशः सागर में जलकी भांति लय होकर संहार को प्राप्त होता है, उन्ही पंचकृत्य के करने वाले श्री सद्गुरु श्री राम की जो मेरे अपने स्वरूप से अभिन्न हैं, मैं शरण लेता हूँ अपनी देहादि पर अहन्ता को छोडकर उन्ही में समाविष्ट होता हूं ।२।

ब्राह्मीं मूर्त्तिं भुवनजनने राजसीं यो बिभर्त्ति
तद्रक्षायां परमदयया वैष्णवीं सात्त्विकींच ।
तत्संहारेऽनलशततनुः तामसीं रौद्रमूर्त्तिं
तं श्री रामं० ॥३॥

भुवनों की सृष्टि करने के समय जो रजोगुणमय ब्रह्मा का स्वरूप धारण करते हैं, और इन की रक्षा (स्थिति) करने के समय सत्त्वगुणमय विष्णु का स्वरूप परम कृपालुता के कारण धारण करते हैं, तथा इसी सृष्टि तथा स्थिति किये हुए जगत का संहार

(शेष पृष्ट 40 पर)

संसाराब्धौ विषयमकरे दुस्तरेसंप्रमग्नाः
उद्धृत्यास्मिन् परमकृपया भेददृष्टिंविच्छिद्य ।
शैवं स्थानमचलममलं प्रापिताः येन भक्ताः
त श्रीरामं० ॥४॥

विषय रूपी मगरमच्छों से भरे, पार करने के लिये कठिन इस संसार सागर में डूबे हुए भक्तजनों को अपनी अपार कृपा से उनकी भेददृष्टि को काट कर, उनमें अभेद दृष्टि उत्पन्न करके उन्हें निकाल कर अमल और अटल शिवधाम पर पहुँचाया, मैं उन्हीं तीन भुवनों के गुरु श्री राम को जो मेरे अपने स्वरूप से अभिन्न हैं नमस्कार करता हूं। अपना देह प्रमातृ भाव लेकर उन्हीं में समाविष्ट होता हूँ।४।

अस्मिंल्लोके ह्युपमन्य्वन्वये यश्चमर्त्यावतार-
मायातिस्म तिमिरहरणः सज्जनानां हिताय ।
प्राकाश्यार्थं स्वमतयशसः प्रेरितो रुद्रव्रातैः
तं श्री रामं० ॥५॥

मैं उस अपने ही स्वरूप, तीन भुवनों के गुरु श्री राम को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने रुद्रगणों से प्रेरणा पाकर अज्ञानरूप अन्धकार को दूर करने के लिए सज्जनों को आत्मज्ञान कराने के लिए तथा अपने त्रिकमत का यश फैलाने तथा प्रचार के लिए इस मनुष्य लोक में उपमन्यु नाम गोत्र वाले ब्राह्मण कुल में मनुष्य योनि में अवतार धारण किया।५।

सूर्ये प्राप्ते धनुषि च गुरौ तारकेशेतुलाया-
माद्ये भौमेसुखगतबुधे शत्रुगे भार्गवेऽपि ।
पङ्गु राह्वोर्दशम सदने सिंहलग्नेतु जात-
स्तं श्री रामं त्रिभुवनगुरुं ॥६॥

सूर्य और बृहस्पति के धनुष राशि में, चन्द्रमा के तुलाराशि में, मंगल के पहले घर में बुध के सुख के चौथे घर, में, शुक्र के छटे घर में, शनि और राहु के दसवें घर में, पहुँचने पर सिंह लग्न में जिन का जन्म हुआ अपने ही स्वरूप तीनों भुवनों के गुरु उनही श्री स्वामी राम को मेरा नमस्कार हो ।६।

मूर्त्या शम्भुः परमसुखदः तेजसा द्वादशात्मा
प्रकृत्यातु शिशिरकिरणः पावनश्चित्रभानुः ।
शैवी दीक्षा गलितवृजिनै र्लक्ष्यते यश्चसद्भिः
तं श्री राम० ॥७॥

जो आकार में कल्याणकारी शिव जैसे सुखदायक थे, तेज में सूर्य जैसे थे, स्वभाव में चन्द्रमा जैसे शीतल थे और अग्नि के समान पवित्र करने वाले थे, त्रिक मार्ग में उपदेश पाने के कारण समाप्त हुआ है जन्म मरण रूप संसार जिनका, ऐसे सत्पुरुषों को ही जिनका साक्षात्कार भली प्रकार हो सकता है, उन अपना स्वरूप बने हुए श्री सद्गुरु श्री राम को मैं नमस्कार करता हूँ ।७।

करने के लिये सैंकडों अग्नि के स्वरूपों युक्त तमोगुण मय रुद्र का स्वरूप धारण करते हैं, उन तीनों भुवनों के गुरु श्री राम को जो मेरा अपना ही स्वरूप हैं, मैं नमस्कार करता हूँ ।३।

रूपं यस्य निखिलजगतां हृत्प्रमोदस्यहेतु-
र्यद्दन्तानां किरणपटलैः छात्र वृन्दा विरेजुः ।
व्याख्यानेन प्रहसितमुखः कर्तनः संशयानां
तं श्री रामं त्रिभुवनगुरुं ॥८॥

जिन का रूप जगत में सब भक्तजनों के हृदय को आनन्द से भर देने का कारण था, जिन के सुन्दर दांतों की किरणें शिष्य वर्ग को आनन्द मग्न करती थी, हंसते हुए मुख से व्याख्यान करने से जो सब के संशयों को मिटा देते थे, उन अपना ही स्वरूप बने तीनों भुवनों के गुरु श्री राम को मैं नमस्कार करता हूँ । अपने देहाभिमान को उन्ही के स्वरूप में लय करके उनमें ही समाविष्ट हो जाता हूँ ।८।

बाल्यादेव परम तपसि दुःसहेवर्तितेस्म
विश्वमेतत् परममहिमा यश्च स्वात्मन्यद्राक्षीत् ।
स्वात्मानं च जगति निखिले ज्ञान दृष्ट्या सदैव
तं श्री रामं० ॥६॥

जिन सद्गुरु श्री राम ने अपनी बाल्यावस्था कठिन तपस्या-में बिताई, जो इस संवित् रूप महिमा युक्त जगत को अपने संवि-

त्स्वरूप से अभिन्न देखते थे और ज़ो अपने स्वरूप को भी सारे जगत में दर्पण में प्रतिबिम्ब की नाई देखते थे, उन सद्गुरु को जो मेरे स्वरूप से अभिन्न हैं, तथा तीनों भुवनों के गुरु हैं नमस्कार करता हूं, अपना शरीर, मन, इंद्रिय प्राण लेकर मैं उन, में ही समाविष्ट हो जाता हूँ।९।

य: शैवाख्यं परमममृतं निर्गतं स्वाननाब्जात्
तत्पादाब्जानुगतमनसो भक्तवृन्दानपीप्यत्।
एतद्देहं परित्यज्य ह्यगाच्छाश्वतं शैवधाम
तं श्रीरामं त्रिभुवनगुरुं स्वात्मरूपं नमामि ॥१०॥

जिन सद्गुरु ने त्रिकमत का सार रूप शिव से एकता कराने वाला शैव नाम का अपने मुख कमल से निकला हुआ अमृत उन्हीं सद्गुरु के चरण कमलों में एकाग्रमन लगे हुए भक्त-जनों को पिलाया और जो सद्गुरु अन्त में इस भौतिक शरीर का त्याग करके अटल और अविनाशी शैवधाम को पधारे, मैं उन्ही तीन भुवनों के गुरु, मेरा अपना ही स्वरूप बने हुए श्री राम सद्गुरु को नमस्कार करता हूं, अपने इन्द्रिय, मन प्राण आदि लेकर उन्हीं में लय होने की प्रार्थना करता हूँ।

इति श्री स्वामी विद्याधरकृता गुरुस्तुतिः समाप्ता ॥

स्वात्मनिष्ठं गुरुं श्रेष्ठं भवसागरतारकम् ।
श्रीरामस्य प्रियं शिष्यं महाताभमहं भजे ॥१॥
बुद्धिवृद्धं वयोवृद्धं त्रिक सारस्यवेदकम् ।
प्रहसन्तं गुरुं वन्दे सर्वानुग्रह कारकम् ॥२॥
तेजोमयं सदा शान्तं त्रिकसागर पारगम् ।
दयावन्तं च तत्त्वज्ञं संसारभयनाशकम् ॥३॥
पञ्चकृत्यकरं वन्दे शक्तिचक्रेश्वरं विभुम् ।
विश्वंस्वात्मनि पश्यंतमात्मानं सर्वगं तथा ॥४॥
महात्मानं महाताभं शरणागतवत्सलम् ।
नमामि बुद्धिमन्तं तं सर्वशास्त्र विशारदम् ॥५॥
यस्य स्मरण मात्रेण दुस्तरो भेदसागरः ।
निलीयते क्षणेनैव मुक्तिदं तं गुरुं श्रये ॥६॥

महामाहेश्वराचार्याभिनवगुप्त सन्तति-
परम्परागतं वन्दे त्रिकदर्शन भास्करम् ॥१॥

अति उत्तम (३६ तत्त्वों से उत्तीर्ण) स्वातन्त्र्य रूपी ऐश्वर्य-सम्पन्न, महेश्वर स्वभाव में रमण करने वाले अभिनवगुप्त नाम वाले तथा अटल स्वरूप होने के कारण नित नये होते हुए भी मन, वाणी का विषय न होने के कारण छिपे हुए (गुप्त) आचार्य की शिष्य परम्परा से आऐ हुए शिव, शक्ति, नर रूप त्रिक की एकता को सिद्ध करने वाले, सूर्य समान चिदानन्दघन गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ—देह-प्राण-शून्य आदि मित प्रमातृभाव को उन्हीं में लय करके उन में समाविष्ट होता हूँ।१।

श्रीरामाद्दीक्षितं सम्यक् परतत्त्व विदर्शकम् ।
पञ्चकृत्य स्वभावस्थं गुरुं वन्दे महेश्वरम् ॥२॥

श्री राम नाम वाले तथा भोग, मोक्ष तथा स्वातन्त्र्यरूप अपने ही स्वरूप में क्रीडनशील गुरु से भली प्रकार अर्थात् परम शिव पद पर स्थिति की प्राप्ति तक उपदेश किये गये परम उत्कृष्ट तत्व अर्थात् जीवात्मा की परमात्मा के साथ एकता के सिद्ध करने वाले तथा सृष्टि स्थिति, संहार, पिधान, अनुग्रह रूप पांच कार्यों के करने के स्वभाव वाले, अज्ञान रूप अंधकार के नाश करने वाले स्वातंत्र्य रूप ऐश्वर्य सम्पन्न गुरु की मैं शरण लेता हूँ।२।

श्रीमन्तं स्वात्मगोविन्दं जीवन्मुक्तं च चिन्मयम्।
परा स्वातन्त्र्य भावस्थं गुरुं वन्दे निरामयम्॥३॥

भोग तथा मोक्ष लक्ष्मी युक्त, चारों वाणियों (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी) के स्वामी, स्थूल आदि शरीर धारण करते हुए भी समाहित, संविन्निष्ट, ज्ञानों तथा क्रियाओं में स्वतंत्र पराहंता में स्थित, जन्ममरण रूप रोग से उत्तीर्ण गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।३।

आजानुबाहुं तं वन्दे शंखग्रीवं शुक नासिकम्।
दीर्घमुखं तडिन्नेत्रं शैव शास्त्र विशारदम्॥४॥

उन सद्‌गुरु को जिनके घुटनों तक लम्बे बाज़ू हैं (सर्व-कर्ता भाव) शंख जैसी सुन्दर ग्रीवा है (चैतन्य शिव और जडजगत को एक बनाकर सुन्दरता अर्पण की है जिसने)। सुन्दर तोते की जैसी नाक है जिनकी बडा है मुख जिनका (सर्वज्ञता) बिजली जैसे प्रकाश युक्त नेत्र हैं जिनके (अज्ञान के नाशक) शिव के साथ एकता सिद्ध करने वाले त्रिक दर्शन में अद्वितीय आचार्यरूप गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।४।

स्वप्रकाश विमर्शेन सर्वान् सर्वज्ञकारिणम्।
त्रिकदर्शन तत्त्वज्ञं गुरुं वन्दे सदाशिवम्॥५॥

जिसे सिद्ध करने के लिए प्रमाण असमर्थ हैं ऐसे स्वतः सिद्ध स्वतंत्र, पराहन्ता के विमर्श से सभी भक्त जनों को सर्वज्ञ

आदि (सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, पूर्ण, व्यापक, नित्य) बनाने वाले, शिव शक्ति, नर रूपी त्रिक की एकता सिद्ध करने वाले शैव मत के परमार्थ के जानने वाले, ज्ञान के अधिष्ठाता रूप गुरु को मैं नमस्कार करता हूं ।५ ।

शिवागम शक्ति सम्पन्नं षट्त्रिंशत्तत्त्ववेदकम् ।
शिवरूप समापन्नं गुरुं वन्दे शिवात्मकम् ॥६॥

शिव सम्बन्धी रहस्य शास्त्रों, तन्त्र इत्यादि में सिद्ध की हुई पराहन्ता और उसके विकासरूप अनन्तशक्ति चक्रों की सम्पदा युक्त (चक्रेश्वर) शिव से पृथ्वी तक छतीस तत्त्वों के पारमार्थिक स्वरूप को जानने वाले, शिव भाव को प्राप्त हुए, अहंभाव में समाविष्ट शिव रूप (शिव से अभिन्न) गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ ।६।

परां च पूर्णवत्पश्यन् मध्यमां वैखरींसरन् ।
परा प्रकाशवपुष्पं वन्दे भट्टारकं गुरुम् ॥७॥

परा वाणी रूप (चित्, आनन्द) को परिपूर्ण भाव से (उस से अभिन्न रहकर) पश्यन्ती (इच्छा शक्ति रूप) से मध्यमा (ज्ञान शक्ति) में और वैखरी (क्रिया शक्ति) में प्रसर में आते हुए, उत्कृष्ट परमशिव रूप रूपी प्रकाश के स्वरूप युक्त कल्याण रूप गुरु को मैं प्रणाम करता हूं ।७।

लोकवद्व्यवहारेऽपि त्रिपदाव्यभिचारिणम् ।
वैतवर्यात्म सम्पन्नं वन्दे चिद्भैरवं गुरुम ॥८॥

सर्वसाधारण लोगों की भान्ति अपन्ने दिन प्रतिदिन के वहिर्मुख व्यवहार के चलाने में भी, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अथवा पदार्थों की सृष्टि, स्थिति, संहार के आद्य मध्य और अन्त के तीनों पदों में अपने पराहन्ता स्वरूप शिव भाव से न टलने वाले, विमर्शरूप तर्क, निरन्तर स्वात्मविमर्शरूप तर्क वितर्क और विचार से चैतन्यरूप परमशिवरूपी सम्पदा को प्राप्त किये हुए, चैतन्यरूप भैरव स्वरूप गुरु को उनके साथ तादात्म्य की प्राप्ति के लिए शरण मांगता हूं ।८।

त्रितयभोगिनं वन्दे वीरेशं नौमि सर्वगम् ।
चक्रेश्वर समाधिस्थं गुरुं वन्दे महाह्रदम् ॥९॥

तीनों जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति को तुर्य चमत्कार से भरकर भोग करने वाले (भोक्ता रूप) गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ, सभी विषयों को ग्रास करने मैं समर्थ इन्द्रिय समूह रूप वीरों के स्वामी अन्तः तथा वहिष्करण रूप शक्ति चक्र के ईश्वर, जड चेतन सभी में व्यापक गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ । सभी शक्तिचक्रों के स्वामी, अन्तर्मुख तथा बहिर्मुख दोनों अवस्थाओं पराहन्तारूप समाधिनिष्ट, संवित् रूप बडे सागर रूप गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ ।९।

कृता संवित्स्वरूपेणं स्तुतिर्गु रुप्रसादतः।
यस्याः पठनमात्रेण शिवतुल्यो भवेन्नरः ॥१०॥

ऐसे सद्गुरु के अनुग्रह रूपी प्रेरणा से संवित् (पराहन्ता) स्वरुप त्रिक मतानुसार यह गुरु महाराज के गुण कीर्तन रूप स्तुति रची गई, जिस के पाठमात्र से स्तुति का पाठ करने वाला भक्त शिव के समान, जन्म मरण के बन्धन से मुक्त ,शिव के समान, जन्म मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है।१०।

ताराचन्द्रः सुविखयातः प्रेरितो रुद्रशक्तिभिः।
जगाम सद्गुरुं शान्तं गोविन्दं शिवरूपिणम्।१।

शिष्य प्रज्ञां गुरुर्दृष्ट्वा मोक्षमार्गमुपादिशत्।
सोऽपि हृष्टो जनानन्यान् शैव शास्त्राण्यपाठयत्।२।

आर्ताश्च दुःखिताश्चैव भवसागर पीडिताः।
आत्मज्ञान प्रदानेन मोचिता येन तं नुमः।३।

तेजसा सूर्य संकाशं शीतलं चन्द्र सदृशम्।
वाचस्पतिं गुरुं वन्दे महाकारुण्य रुपिणम्।४।

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषका : ।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥

सभी मोक्षसिद्धि के अभिलाषी आनन्द प्राप्त करें, निंदक नष्ट हो जायें, मुझे शाम्भव (अभेदमय) अवस्था प्राप्त हो, मेरे गुरुदेव सदा मुझ पर अनुग्रह करते रहें ।

राजस्वस्ति प्रजास्वस्ति देशस्वस्ति तथैव च ।
यजमान गृहे स्वस्ति स्वस्ति गो ब्राह्मणेषु च ॥

राजा तथा प्रजा कल्याण से रहें, देश में भी कल्याण और सुख रहे, यज्ञ करने वाले के घरों में कल्याण रहे, गऊ तथा ब्राह्मण सब कल्याणमय हों ।

नमामि यामिनीनाथलेखालङ्कृत कुन्तलाम् ।
भवानीं भवसन्तापनिर्वापण सुधानदीम् ॥

चन्द्रमा की कला से शोभित केशों वाली, संसार के दुखों को हटाने में अमृत की नदी रूप देवी (चिच्छक्ति) को मैं प्रणाम करता हूं । उसी में समावेश प्राप्त करता हूँ ॥

उों तत्सत्

महामाहेश्वराचार्य श्रीमदुत्पलदेवाचार्य विरचितं – संग्रहस्तोत्र

(हिन्दी भाषा टीका सहित)

संग्रहेण सुखदुःखलक्षणं
मां प्रति स्थितमिदं शृणु प्रभो ।
सौख्यमेष भवता समागमः
स्वामिना विरह एव दुःखिता ॥१॥

अब हम स्तोत्रकार (श्री उत्पलदेवाचार्य) के रचे हुए सुन्दर रचना की विशेषता युक्त संग्रहस्तोत्र की टीका करेंगे। चिद्भैरव का साक्षात्कार करके उसके साथ समावेश प्राप्त करने के साथ व्युत्थान में भी उसी समावेश के बलिष्ट संस्कार के कारण उस चिद्भैरव को सन्मुख करके समावेश में पहचाने स्वरूप को जानने के लिए कहते हैं कि हे प्रभो! मेरी जबानी सुख और दुःख का लक्षण जैसे वे मेरे प्रति, न कि किसी दूसरे प्रमाता के प्रति ठहरे हैं, सुनिये। (प्रभो! यह आमन्त्रण पद भी स्वात्म समावेश क्रम से परमेश्वर को सन्मुख करने के लिए रहस्य मन्त्र की नाई उपयुक्त हुआ है) आप चिन्नाथ के साथ यह समागम जो प्रत्यक्ष रूप से भासमान है और आप के साथ समावेश

की एकता दिखाता है, वही परम सुख है, इस के विपरीत आप से वियोग ही दुःख है, संयोग सुख ही है और संयोग ही सुख है। संयोग के अतिरिक्त कोई दूसरा सुख का कारण नहीं।१।

तो इस लिए—

अन्तरप्यतितरामणीयसी
या त्वदप्रथनकालिकास्ति मे।
तामपीश परिमृज्य सर्वतः
स्वं स्वरूपममलं प्रकाशय ॥२॥

आप मेरी सूक्ष्म से भी सूक्ष्म मलिनता को भी, जिस के कारण समावेश में आप का तात्त्विक चित्स्वरूप मुझे अप्रकट हो जाता है और प्राण आदि के संस्कार के रूप में प्रकट हो जाता है, सर्वतः हटाकर अपना निर्मल, सर्वसाधारण चित्स्वरूप अन्तःकरणों अथवा बहिष्करणों के व्यापार में भी प्रकट कीजिए। वैसे तो शक्तिपात के आरम्भ से लेकर ही मेरा मल हटता गया और उसका बडा भाग हट कर कुछ अल्प भाग रह गया है, उस अल्प भाग को भी निर्मल बनाकर मुझे अपने स्वरूप में अभिन्न रूप से मिला लीजिए।२।

यही मेरी सब से उत्कृष्ट आकांक्षा है। इसी बात को कहते हैं—

तावके वपुषि विश्वनिर्भरे
चित्सुधारसमये निरत्यये।

तिष्ठतः सततमर्चतः प्रभु
जीवितं मृतमथान्यदस्तु मे ॥३॥

जो कुछ भी जड अथवा चेतन पदार्थ प्रकाशमान है, वह चित्प्रकाश से अभिन्न रहकर ही भासमान हो सकता है। देश काल, आकार भी जो भेद उत्पन्न करने के कारण हैं, प्रकाशमान होने के करण चित्प्रकाश से अभिन्न हैं, और इस लिए चित्प्रकाश के स्वरूप में भेद उत्पन्न नहीं कर सकते। इस कारण चित्प्रकाश में सारा विश्व अभिन्न रूप से ओत प्रोत होने के कारण चित्प्रकाश की विश्वरूपता स्वतः सिद्ध है।

ऐसे आपके अविनाशी, चित् और आनन्द पूर्ण स्वरूप में जिस से कही गई युक्ति से सारा विश्व अभिन्न रूप से स्थित है, अटल स्थिति पाकर (समाविष्ट होकर) मैं आप की पूजा (विमर्शन) करने के योग्य बनूं, तथा आपका एकाग्रचित से पूजन (विमर्शन) करता हुआ आप के चित्स्वरूप में समाविष्ट हो जाऊं, इस बात की चिन्ता नहीं कि मैं जीवित रहूं या शरीर त्याग करूं या शरीर की कोई और अवस्था हो। इस श्लोक में चिद्रूपता में स्थिति के लिए आदर और शारीरिक अवस्थाओं के लिए अनादर का संकेत किया गया है।३।

जीना मरना आदि अवस्थाएं देहाभिमान मय होती हैं तो उन्हें किस कारण चाहा गया है? ऐसी शङ्का करके कहते हैं कि आप के चित्स्वरूप में समाविष्ट भक्तजनों के अभिमान भी किसी काम की नहीं —

ईश्वरोऽहमहमेव रूपवान्
पण्डितोऽस्मि सुभगोऽस्मिकोऽपरः।
मत्समोऽस्ति जगतीति शोभते
मानिता त्वदनुरागिणः परम् ॥४॥

आप के स्वरूप के साथ समावेश द्वारा प्राप्त की है एकता जिन्होंने उन आप के अनन्य भक्तों को ही, न कि ब्रह्मा आदि देवताओं को यह अभिमान धारण करना शोभा देता है कि मैं ही ईश्वर (स्वतंत्र) हूँ, प्रशंसनीय चित्स्वरूप युक्त होने के कारण सुन्दर हूं—पण्डा अर्थात् तत्त्व को जानने वाली बुद्धि से युक्त हूँ, परमानन्दरस के बढने के कारण सर्व प्रिय हूँ, अधिक क्या कहें, इस संसार में मेरे समान दूसरा कौन है? कोई भी नहीं, ऐसा अभिमान भक्तजनों को ही शोभा देता है,

"अपने चित्स्वरूप सीढी पर ऊपर ऊपर चढने से अपने स्वामी चित्स्वरूप के साथ एकता प्राप्त होती है, यदि इस सीढी पर न चढ़े, (विमर्श में त्रुटि हो) तो चित्स्वरुप से विमुख हो जाने के कारण विकल्पात्मक होने से वहिर्मुखता हो जाती है ॥"

यतः आपके भक्तों को ही ऐसा अभिमान शोभता है, तो इस लिए—

देव देव ! भवदद्वयामृता-
ख्यातिसंहरण लब्धजन्मना ।

तद्यथास्थितपदार्थ संविदा
मां कुरुष्व चरणार्चनोचितम् ॥५॥

हे जडाजड रूप जगत के अधिपति ! आप के साथ एकता रूप आनन्द की अप्रकटता का संहार करने से (जिससे आपका स्वरूप नित्योदित रहे) पाया है जन्म जिस संवित् ने, ऐसी संवित् से जो सभी वेद्य पदार्थों को यथावस्थित चिद्रूप से जाने (अर्थात् मेरी संवित् को निर्मल बनाइये) मुझे अपनी शक्तियों की पूजा (विमर्शन) योग्य बनाइये ।५।

वह पूजा कैसी है जिसके योग्य मैं तुझे बनाऊं ? इसके उतर में भगवान की उक्ति की संभावना करते हुए, मानों भगवान ही पूछते हैं, कहते हैं—

ध्यायते तदनुदृश्यते ततः
स्पृश्यते च परमेश्वरः स्वयम् ।
यत्र पूजन महोत्सवः स मे
सर्वदास्तु भवतोऽनुभावतः ॥६॥

"वाणी के उच्चार रहित अर्थात् मन से ही परमार्थरूप आत्म स्वरूप का विमर्शन करे" इस नीति के अनुसार स्वरूप का ध्यान करे, तत्पश्चात् उस स्वरूप का साक्षात्कार करके उसे प्रकट रूप से देखे इस के अनन्तर गाढ समावेश द्वारा उसके साथ एकता प्राप्त करे, (उच्चार, करण इत्यादि स्थूल आणव उपायों के विना ही) जिस अवस्था में ऐसा चिन्मय स्वरूप प्रकट होजाए,

वही भक्त जन के लिए पूजारूप महोत्सव होने के कारण परम उपादेय है, वही महोत्सव आप के प्रभाव से मुझे परमानन्द की प्राप्ति हो ॥६॥

इसी समावेश की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

यद्यथास्थित पदार्थ दर्शनं
युष्मदर्चन महोत्सवश्च यः ।
युग्ममेतदितरेतराश्रयं
भक्तिशालिषु सदा विजृम्भते ॥७॥

चित्स्वरूप (यथास्थित) पदार्थों के ज्ञान विना आप के अद्वयरूप चित्स्वरूप की पूजा का महोत्स्व प्राप्त नहीं हो सकता और पूजा महोत्सव प्राप्त हुए विना पदार्थों को यथास्थित चित्-स्वरूप से जाना नहीं जा सकता, तो यह दोनों (पदार्थों का यथास्थित रूप से ज्ञान, पूजा का महोत्सव) एक दूसरे से अवि-नाभाव से आश्रित हैं और भक्तिजनों में विकास पाते हैं ।७।

विकास में आते हुए उपाय पूर्वक इसी बात की आकांचा करते हैं—

तत्तदिन्द्रियमुखेन सन्ततं
युष्मदर्चनरसायनासवम् ।
सर्वभावचषकेषु पूरिते-
ष्वापिबन्नपि भवेयमुन्मदः ॥८॥

सभी विषय तथा वेद्य पदार्थ मानो पानपात्र हैं वे नेत्र आदि इन्द्रियों द्वारा (शब्द स्पर्श आदि संवित् रूप) आप के साथ एकता रूप चिदमृत रुप मदिरा से भरे हों, उसी मदिरा को पीता हुआ (इंद्रियों से सब व्यापार करता हुआ, उसे तुर्यरूप पर आरूढ करता हुआ) मैं हर्ष से उन्मत हो जाऊं, यही मेरी प्रभु से प्रार्थना है ।८।

अन्यवेद्यमणुमात्रमस्ति न
स्वप्रकाशमखिलं विजृम्भते ।
यत्र नाथ ! भवतः पुरे स्थितिं
तत्र मे कुरु सदा तवार्चितुः ॥९॥

जिस आप के चित्स्वरूप में (जिस में सारा विश्व समाया हुआ है और जो सब विश्व में व्यापक रूप से भरा हुआ है) भिन्न किसी पदार्थ की सत्ता ही नहीं है, कोई दूसरा भिन्न वेद्य पदार्थ ही नहीं है, और जहां सारा ग्राह्य ग्राहक रूप जगत स्व-प्रकाश ही विकसित होता है, स्वरूप में आप के विमर्शन रूप पूजा में लगे हुए मुझ भक्त की स्थिति करा दीजिए, जिस से मेरा समावेश घना हो जाए ।९।

ऐसी प्रार्थना करने पर भी जगत में चाही हुई अभिलाषा के पूर्ण न होने पर दुःखी होकर कहते हैं कि—

दासधाम्नि विनियोजितोऽप्यहं
स्वेच्छयैव परमेश्वर ! त्वया ।
दर्शनेन न किमस्मि पात्रितः
पादसंवहन कर्मणापि वा ॥१०॥

आप ने किसी दूसरे की प्रेरणा आदि के विना ही अपनी स्वतंत्र इच्छा से, मेरी अपेक्षा किए विना ही शक्तिपात किया और मुझे अपना दास बनाया, अब क्या कारण है कि शक्तिपात होते हुए भी आप मुझे, दर्शन (शाम्भव समावेश) का या चरणों को दवाने (रुद्रशक्ति समावेश) का पात्र नहीं बनाते ।१०।

अपने प्रभु को उल्हाना देते हुए, प्रभु को अपनी ओर सन्मुख कराने के लिए कहते हैं कि—

शक्तिपातसमये विचारणं
प्राप्तमीश ! न करोषि कर्हिचित् ।
अद्य मां प्रति किमागतं यतः
स्व प्रकाशनविधौ विलम्बसे ॥११॥

हे स्वामी ! (यह आमन्त्रण पद स्वतन्त्र शक्तिपात के अनुकूल है) जिस समय आपने मुझ पर शक्तिपात किया उसी समय आप को मेरी योग्यता के बारे में विचार करना चाहिए था, परन्तु आप ने ऐसा कभी न किया, अब जब कि आप ने शक्ति-

पात कर दिया है तो क्या कारण है कि आप अपना चिदात्मक स्वरूप प्रकट करने में (मुझे स्वरूप लाभ कराने के काम में) जो आप को अवश्य करना चाहिए, देर लगाते हैं (टाल मटोल कर रहे हैं) ऐसा टालमटोल न कीजिए।११।

फिर एक और बार प्रभु (स्वामी) के साथ समावेश प्राप्त करने की अभिलाषा से कहते हैं कि—

तत्र तत्र विषये बहिर्विभा-
त्यन्तरे च परमेश्वरीयुतम्।
त्वां जगत्त्रितयनिर्भरं सदा
लोकयेय निजपाणिपूजितम्॥१२॥

मैं उन सभी विषयों में जो बहिष्करणों द्वारा (सुखदुःखादि) नील पीतादिक पदार्थों में या अन्तः करणों द्वारा सुखदुःखादि रूप में भासते हैं, इन सब के भासमान होने पर भी अर्थात् लोकव्यवहार में भी, आप को (चित्स्वरूप को) पराशक्ति के साथ अभिन्न रूप से सम्बद्ध और भव, अभव, अतिभव रूप तीनों जगतोंसे सम्पूर्ण अपने शक्तिरुप से हाथों से पूजा हुआ देखूं।१२।

ऐसी पूजा के योग्य नित्योदित समावेशरूप फल की कांक्षा करते हुए कहते हैं कि—

स्वामि सौधमभिसंधिमात्रतो
निर्विबन्धमधिरुह्य सर्वदा।

स्यां प्रसाद परमामृता सवा-
पानकेलिपरिलब्धनिर्वृतिः ॥१३॥

आप चित्प्रभु के अतिसुन्दर अमृत समूहमय शाक्तपद रूप ऊंची हवेली पर इच्छा मात्र से ही अर्थात् किसी स्थूल उपाय उच्चार, करण, ध्यान आदि के विना ही बे रोक टोक चढ जाऊं अर्थात् शरीर, प्राण आदि की प्रमातृता को हटाकर चित्प्रमातृ-भाव अङ्गीकार करलूं, और आप के अनुग्रह रूप अमृत आसव के पीने की क्रीड़ा से परमानन्दपूर्ण हो जाऊं।

इस श्लोक में लौकिक राजा आदि ऐश्वर्यवान पुरुष का दृष्टांत दे कर बताया गया है कि जिस प्रकार उस राजा आदि का विश्वास पात्र दास अपने स्वामी के सभी भोगों का पात्र बनता है, इसी प्रकार भक्तजन भी अपने प्रभु परमेश्वर की सभी शक्तियों सर्वज्ञता आदि का पात्र होता है।१३।

पीछे सिद्धकी हुई पूजा का उपाय बताते हैं—

यत्समस्तसुभगार्थं वस्तुषु
स्पर्शमात्रविधिना चमत्कृतिम्।
तां समर्पयति तेन ते वपुः
पूजयन्त्यचलभक्तिशालिनः ॥१४॥

ईश्वर की माया शक्ति के कारण यद्यपि सभी पदार्थ त्याग-ने या ग्रहण करने योग्य होते हैं, तो भी परमार्थतः चिन्मय होने

के कारण सुन्दर प्रयोजत युक्त ही हैं। ऐसी बात होते हुए जब यह पदार्थ इन्द्रियों का विषय बनते हैं तो उन का रूप स्पर्शादि इन्द्रियों के मार्ग में जाकर संवित् के व्यापार से किसी अलौकिक चमत्कार को देता है, और अचल भक्तिमान पुरुष आनन्ददायक समावेशों से सुशोभित होकर आप की पूजा करते हैं। विषयों द्वारा इन्द्रियों का तर्पण करने से चिदानन्द में विश्रान्ति पाते हैं ॥१४॥

भेदमय मलिन पदार्थों से शुभ चित्स्वरूप भगवान की पूजा कैसे हो सकती है? ऐसी शंका करके "सबदशाओं में पदार्थ चित्स्वरूप होने से भगवत्स्वररुप होकर शुद्ध ही है" इसी बात को प्रकट करने के लिए कहते हैं कि—

स्फारयस्यखिलमात्मना स्फुरन्
विश्वमांमृशसि रूपमामृशन् ।
यत्स्वयं निजरसेन घूर्णसे
तत्समुल्लसति भावमण्डलम् ॥१५॥

अपने चिन्मयस्वरूप से भासमान होते हुए आप सारे जगत को अपने चैतन्य स्वभाव प्रकाशमान स्वरूप से प्रफुल्लित करते हैं (जगत की सृष्टि, स्थिति करते हैं), तथा जब आप अपने स्वरूपका विमर्शन करते हुए अपने चित्स्वरूप का चमत्कार लेते हैं, जगत को अपने स्वरूप में लीन करके आनन्दघन बना देते हैं, तो जगत का निमेष (संहार) हो जाता है, आप अपने परि-पूर्ण चित्स्वभाव के कारण जिस किसी प्रकार स्पन्दन करते हैं,

जगत भी उसी रूप में चिद्भाव से प्रकट होता है, जगत की सृष्टि हो जाती है।

इस श्लोक में चित्स्वरूप परमेश्वर के पंचकृत्य की ओर संकेत है। पूर्ण स्वरूप में उसी अवस्था के योग्य सृष्टि, स्थिति और संहार इच्छा, ज्ञान और क्रिया के परिस्पन्दरूप सक्रम कहे गये हैं, संवित् तत्व के अक्रम रूप में यह शक्तियां अवियुक्त होने के कारण अक्रम भी हैं, पिधान तथा अनुग्रह को भी इनमें ही समझलेना चाहिए ॥१५॥

यद्यपि परमेश्वर भूमि (पूर्ण अवस्था) में वेद्य पदार्थों को शुद्ध निर्मल चित्स्वरूप मान भी लिया जाय, तथापि माया पद (जीव अवस्था) जो भेदरूप विघ्नों से व्याकुलित है, में इन को कैसे निर्मल माना जा सकता है? ऐसे शंका करके ऐसा उपाय बताते हैं जिस से भेदरूप विघ्न का प्रसार नष्ट हो जाय—

योऽविकल्पमिदमर्थमण्डलं
पश्यतीश ! निखिलं भवद्वपुः ।
स्वात्मपक्षपरिपूरिते जग-
त्यस्यनित्य सुखिनः कुतो भयम ॥१६॥

हे सर्वैश्वर्य सम्पन्न स्वामी ! जो उत्तम योगी (सारे पदार्थ समूह को) निर्विकल्प भाव से अर्थात त्यागने और ग्रहण करने की बुद्धि के बिना आप भैरवी मुद्रा में स्थित होकर (चित्स्वरूप में एकाग्र होकर इन्द्रियों से सभी लोक व्यवहार करता हुआ)

सारे पदार्थ समूह को आपसे अभिन्न चित्स्वरूप ही देखे (दर्पण में प्रति विंबित नगर की नाईं उस दर्पण से भिन्न होता हुआ भी उस से अभिन्न) देखे, वह सारे जगत को अपने चित्स्वरूप से अभिन्न होने के कारण स्वस्वरूप ही देखता है, इस प्रकार भेदरूप विघ्न का समूल नाश होने के कारण वह परम सुखपाता है, और उसे किसी का भय नहीं रहता, भय सदा अपने से भिन्न किसी दूसरे के होने पर ही होता है ॥१६॥

इसी अभेद दृष्टि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि—

कण्ठकोणविनिविष्टमीश ! ते
कालकूटमपि मे महामृतम् ।
अप्युपात्तममृतं भवद्वपु-
र्भेदवृत्ति यदि मे न रोचते ॥१७॥

हे स्वामी ! कालकूटनाम का महाविष भी जो आपके गले में आप से अभिन्न होकर आप का ही अंग बन कर ठहरा है, मेरे लिए महा अमृत है, क्योंकि यह मुझे परिपूर्ण व्याप्ति देता है, इसके प्रतिकूल प्राप्त हुआ अमृत भी यदि आप के चित्स्वरूप से भिन्न हो, तो चेत्यमान न होने के कारण उसकी कोई वास्तविक सत्ता ही नहीं, और इस कारण मुझेऐसे अमृत की कोई चाह नहीं ॥१७॥

ऐसे ही अद्वय समावेश को अपने चित्स्वरूप में नित्योदित भाव से कांक्षा करते हुए कहते हैं कि—

त्वत्प्रलाप मयरक्त गीतिका-
नित्य युक्तवदनोपशोभितः ।
स्यामथापि भवदर्चनक्रिया-
प्रेयसीपरिगताशयः सदा ॥१८॥

समावेश की विवशता के कारण अनायास ही उच्चारण में आती हुई, भक्ति और प्रेम के प्रकट करने वाले मधुर रंग में रंगी हुई विमर्शपूर्ण मधुर और सुन्दर गीतिकाओं (स्तुति) के गाने में मेरा सुख सुशोभित और सुन्दर (दीप्तिमान) हो जाय, इसके अतिरिक्त वर्णन की हुई आप की अभेद भक्ति ही जो मुझे परम प्रिया के समान दिखती है, से अंगीकार किए हुए चित्त वाला बनूं (अर्थात् वह भक्ति मुझे अभिन्न भाव से प्राप्त हो, तथा मैं भी उस पूजा रूपी भक्ति का स्वरूप (तत्व) जान लूं) ॥१८॥

समावेश का चमत्कार प्राप्त होकर भी क्यों बार बार समावेश की आकांक्षा करते हैं, ऐसी शंका करके कहते हैं कि—

ईहितं न वत पारमेश्वरं
शक्यते गणयितुं तथा च मे ।
दत्तमप्यमृतनिर्भरं वपुः
स्वं न पातुमनुमन्यते तथा ॥१९॥

आश्चर्य की बात है कि परमेश्वर की अपनी स्वतन्त्र इच्छा से की हुई चेष्टाएं जानी नहीं जा सकती, इस बात को सिद्ध करने के लिए कहते हैं कि यद्यपि मुझे अपना आनन्दघन स्वरूप अनुग्रह करके दिया भी है, तो भी उसे निरन्तर रूपसे पीने नहीं देते (अर्थात् बार बार व्युत्थान में बहिर्मुख करके स्वरूप में स्थित रहने नहीं देते) इसी लिए बार बार समावेश की आकांक्षा की जाती है ॥१६॥

जब ऐसी बात है, तो—

त्वामगाधमविकल्पमद्वयं
स्व स्वरूपमखिलार्थ घस्मरम् ।
आविशन्नहमुमेश ! सर्वदा
पूजयेयमभिसंस्तुवीय च ॥२०॥

हे पराभट्टारिका उमापति ! मैं आप के स्वरूप में जो निरंतर छेदरहित. चिद्रूप अभेदसार सब जड चेतन का अपना तात्विक स्वरूप है और षडध्वमय सभीं पदार्थों के ग्रसनशील है, उस ऐसे आप के स्वरूप में समाविष्ट होकर (तन्मय होकर) आपकी पूजा करता रहूँ, बडे आदर के साथ अपनी सत्ता को आप में लीन करूं और अभेद विमर्शसार भाव से आप की स्तुति करता रहूं ॥२०॥